Mr. Speaker: I have to inform the members that copies of the statement regarding recent negotiations with Pakistan in regard to the problem of evacuee property, which the Minister of Rehabilitation has laid on the Table just now, are available from the Publications counter. Members may, after reading the statement, table short notice questions in case they wish to have further information or clarification on any points arising from the statement. This is with reference to the observation which I made the other day in connection with Question No. 2202.

The short notice question, I may say, will not be rejected on the ground of want of urgency in this case and the hon. Minister has agreed to answer those questions. Hon. Members may, therefore, table questions so far as this is concerned.

Shri D. C. Sharma (Hoshiarpur): By what time should the short notice question be sent by today?

Mr. Speaker: As early as possible. They can give notice of questions immediately, or by tomorrow at the most, and the hon. Minister will reply to them as early as he can.

CODE OF CRIMINAL PROCEDURE (AMENDMENT) BILL—*Contd.*

Mr. Speaker: The House will proceed with the further consideration of the motion for reference to the Joint Committee of the Code of Criminal Procedure (Amendment) Bill, moved by Dr. Katju.

There is also the further consideration of the motion by Shri S. V. Ramaswamy, along with the amendments for circulation, etc.

Now the debate, so far as Members are concerned, will conclude today by 10·45, and the hon. Minister will reply tomorrow.

Shri K. R. Sharma (Meerut Distt.—West): I had given notice of an amendment.

Mr. Speaker: That was disallowed, I understand.

श्री नन्द लाल शर्मा (सीकर) : माननीय अध्यक्ष महोदय, कल के प्रसंग में मैं स्टेटमेंट आफ आब्जेक्ट्स एंड रीज़न्स में जो हमारे गृह मंत्री महोदय ने यह कहा कि जनता को न्यायालय को अपना न्यायालय समझना चाहिये, उसके सम्बन्ध में दो शब्द कहना चाहता हूं। जब तक हम लोग इस सारी पद्धति में ऐसा परिवर्तन नहीं कर देते कि जनता उसको यमराज का घर न समझे, तब तक जनता उसको अपना घर नहीं समझ सकती। इसके लिये यह परमावश्यक है, जैसा कि मैंने पहले कहा था कि, भ्रष्टाचार को रोका जाय। मजिस्ट्रेट की आंखों के नीचे पेशकार प्रजा से धन लेता रहता है यह बात किसी से छिपी नहीं है। लोअर कोर्ट्स में चाहे हमारे माननीय गृह मंत्री ने कार्य न किया हो लेकिन यह बात जनता के लिये प्रत्यक्ष है। मैं इस सम्बन्ध में और विशेष ध्यान न देते हुये, जैसा मैंने कल निवेदन किया, फिर यह निवेदन करूंगा कि इसमें संशोधन करने के लिये आपको इस सारी पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा केवल क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड के संशोधन मात्र से कार्य न चलेगा। एक बात।

अब सिलेक्ट कमेटी के सामने यह विषय आने वाला है। इसलिये दो चार शब्द अपने सुझाव के रूप से निवेदन कर देता हूं। आप प्रारम्भ में उद्देश्य और तर्क के वक्तव्य में कहते हैं कि इस बिल का दो प्रकार का उद्देश्य है। एक तो यह कि अभियुक्त को अपनी सुरक्षा के लिये पूरा पूरा अवसर दिया जाय और दूसरा यह कि इन अभियोगों में होने वाले विलम्ब को रोक लिया जाय। इसके लिये आपने प्रयत्न किया है और अपनी दंड प्रयोग पद्धति के अनुसार तीन प्रकार के विभागों में अभियोगों को विभक्त किया है, समरी

[श्री नन्द लाल शर्मा]

ट्राइल, वारंट ट्राइल और सेशन ट्राइल । समरी ट्राइल्स का हमको अनुभव है और हम देखते हैं कि अभियुक्त को अपनी सफाई का पूरा अवसर नहीं मिलता ।

[MR. DEPUTY-SPEAKER *in the Chair.*]

जब कोई मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त पर समरी ट्राइल में फाइन कर देता है और वह अभियुक्त कहता है कि साहब में बिल्कुल बेकसूर हूं, तो हमने मजिस्ट्रेट को यह कहते सुना है कि "मैं समझता हूं कि तुम बेकसूर हो, लेकिन फिर तुम पूरे केस को लड़ो" अगर एक टैक्सी ड्राइवर पूरा केस लड़ता है तो उसको काफी समय लगता है और उसको मोटर ड्राइवर के लाइसेंस से भी हाथ धोना पड़ता है। और वकील को रुपया देना पड़ता है । इसके बदले में अगर वह ५० रुपया फाइन का दे देता है तो उसकी छुट्टी हो जाती है । वह समझता है कि यह सरकार का काम है । और कुछ कहने से ठीक नहीं होगा और वह रुपया दे देता है । तो मेरा निवेदन है कि समरी ट्राइल्स में इस ओर विशेष ध्यान दिया जाय । वारंट केसेज में और सेशन्स केसेज में विशेषकर आपने कमिटल प्रोसीडिंग्स को उड़ा देने का निश्चय किया । कुछ अंश में आपके उद्देश्य बड़े पवित्र हैं और बड़ी अच्छी भावना से प्रेरित हैं कि केस बहुत लम्बा न हो। माननीय श्री दातार ने कल यह शब्द कहा कि विरोधी पक्ष के लोग अभियुक्त के हितों का तो ध्यान रखते हैं पर जनता के हितों का ध्यान नहीं रखते । मैं उन से जूरिसप्रूडेंस के उस मौलिक सिद्धान्त के नाम पर अपील करता हूं कि अभियुक्त होने का अर्थ निश्चित रूप से अपराधी होना नहीं है । किसी को एक्यूज्ड मात्र कह देने से यह सिद्ध नहीं हो जाता, कि उसने कत्ल कर डाला है । आपने स्वयं अपने उद्देश्य और तर्क के विधान में यह लिखा है कि कमिटमेंट प्रोसीडिंग्स की आवश्यकता क्यों थी । इसलिये कि अभियुक्त को अपने विरुद्ध केस को जानने का और उसके विरुद्ध कौन कौन साक्षी आ रहे हैं यह जानने का पूरा अवसर मिले । इस व्यवस्था को चाहे आप और केसेज में से हटा लें लेकिन कत्ल के केसेज में से इसको हटाना अनुचित होगा । मैं इससे भी आगे बढ़ूंगा । आपके मेडीकल जूरिसप्रूडेंस और साइकालाजीकल जूरिसप्रूडेंस के अनुसार यह सिद्धान्त तय हो चका है कि जब कोई अपराध करता है तो विशेष मानसिक स्थिति के कारण करता है । आप देखते हैं कि किसी अपराध को करने के लिये एक व्यक्ति को अपराधी माना जाता है । मैडीकल जूरिसप्रूडेंस के अनसार तो एक व्यक्ति एक प्रकार के रोग, मैनिया, के कारण प्रेरित हो कर एक अपराध कर बैठता है और साइकिक जूरिसप्रूडेंस के अनुसार जब एक व्यक्ति कार्य करता है तो उसके ऊपर बहुत सारी मनोवैज्ञानिक धारायें आ कर कार्य करती हैं । अगर हम सबकी मानसिक भावनाओं को जान सकते तो हम उस समय कितने ही और व्यक्तियों को दंड दे पाते । परन्तु इसके बदले में एक ही व्यक्ति को पकड़ते हैं । इस पर भी जो बुद्धिमान जूरिस्ट हैं उन्होंने न्याय का यह मौलिक सिद्धान्त बनाया है कि सन्देह का लाभ अवश्य ही अभियुक्त को देना चाहिये । अब आप सन्देह का लाभ अभियुक्त को न देकर यह निश्चय कर रहे हैं कि एक्यूज्ड ने निश्चित रूप से ही यह कार्य कर डाला है । इस कमिटमेंट प्रोसीडिंग्स के उड़ जाने से उसकी कितनी बड़ी दुर्दशा होगी । जैसा कि आपने कल कहा था अगर अदंड्य को फांसी पर लटका दिया जाता है तो उसका जीवन लौटने वाला नहीं है । उसका दोष शासन पर जो पड़ेगा उससे कभी भी छटकारा नहीं हो सकता है । इसलिये कमिटमेंट प्रोसीडिंग्स को कम से कम मर्डर ट्राइल में तो

न हटाया जाय । मैं आगे इस विषय में और विस्तार से नहीं जाऊंगा । यह जो उद्देश्य आपने स्टेटमेंट आफ आब्जेक्ट्स एंड रीजन्स में रखे हैं कि अभियुक्त को अपने पक्ष के सिद्ध करने का और अपने ऊपर आने वाले अभियोग का निराकरण करने का पूरा अवसर मिले यह आपके इस वर्तमान बिल से सिद्ध नहीं हो रहा है । और जो आपने कहा है कि कार्य शीघ्रता से सम्पन्न हो और विलम्ब को रोक लिया जाय, इसके लिये हमारे माननीय श्री राघवाचार्य ने कल कहा था कि इसका फल यह होगा कि बहुत से अपराधी इस कारण छूट जायेंगे । हां, कुछ केसेज़ ऐसे अवश्य होते हैं जिनमें पुलिस के कारण या मजिस्ट्रेट की काम न करने की इच्छा के कारण विलम्ब होता है ।

कृषि मंत्री (डा० पी० एस० देशमुख) : ढिलाई है ।

श्री नन्द लाल शर्मा : हम यह प्रत्यक्ष देख चुके हैं, स्वर्गीय डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी के केस में, मेरे और श्री चटर्जी के केस में । जो कागज़ पुलिस इंस्पेक्टर मजिस्ट्रेट के सामने रख देते हैं वह उस पर दस्तख़त कर देते हैं । एक्यूज्ड हाज़िर है मगर उसे पता भी नहीं । अन्ततोगत्वा मजिस्ट्रेट, जब सुप्रीम कोर्ट में साक्षी देने का समय आता है, तो बगलें झांकते हैं । इंस्पेक्टर पुलिस को डिसेंटरी हो जाती है और वह नहीं जा सकते । इस वजह से केस सिद्ध नहीं हो सका ।

Mr. Deputy-Speaker: He must resume his seat now. He took ten minutes the other day; he has already taken fifteen minutes today. I cannot expand the time which we have got. In the last day when the House is to close at 10·45, I must allow no more.

Shri Nand Lal Sharma: Two minutes more, Sir, with your indulgence.

Mr. Deputy-Speaker: Two minutes each will break the camel's back. I have not given chance to Mr. Ramaswamy and one or two other Members. I want to give them a chance particularly because they are not in the Select Committee.

श्री नन्द लाल शर्मा : मैं एक निवेदन और करूंगा और वह है कई अपराधों को कम्पाउन्डेबुल बनाने के सम्बन्ध में यहां पर विचार किया जा रहा है । मैं यह निवेदन करूंगा कि दंड विधान में जिनका चरित्र के साथ सम्बन्ध है और जिसके ऊपर सारे समाज की आधार-भित्ति निर्भर है उसमें कम्पाउन्डेबुल समझौता करने का उपाय देना आचार भित्ति को तोड़ने का मार्ग होगा । मैंने ४९७, ९८ में, अथवा चोरी में ३७९ में अथवा ऐसे और केसेज़ में कई जगह तो रेप के लिये भी कहा गया और यदि वह आपस में समझौता कर लें तो रेप का भी परित्याग कर देना चाहिये । ऐसी परिस्थिति में राजा का शासक का कर्तव्य है कि आचार से सम्बन्ध रखने वाले जितने भी दोष आयें, अपराध आवें उनको कभी भी कम्पाउन्ड न कर सकें ।

एक शब्द डेफिनेशन के सम्बन्ध में भी कह देना चाहता हूं । यदि कोई समाचार पत्र अथवा और कोई व्यक्ति किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध अथवा ऊंचे कर्मचारी वी० आई० पी० के विरुद्ध कोई भावना प्रकाशित करता है तो पुलिस अवश्य ही उस व्यक्ति के अथवा न्यूज़पेपर के गले पर चढ़ जायेगी और इसलिये मेरी राय में उसको कागनेज़ेबुल आफेंस बनाना अनुचित है ।

अन्त में मैं अपने शब्दों को समाप्त करते हुये कहूंगा कि आज एग्ज़ीक्यूटिव का जुडीशरी पर जो निरंतर प्रभाव है उसको आप तभी हटा सकते हैं जब एक तो आप जुडीशरी को सर्वथा स्वतंत्र बना दें । कल आपने स्वयं

[श्री नन्द लाल शर्मा]

स्वीकार किया कि दिल्ली सरीखे पार्ट सी० राज्यों में अभी ऐसा नहीं हो पाया, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का प्रभुत्व अभी पूर्णतः विद्यमान है। मैं आप से और आगे निवेदन करूं कि उनका क्या प्रभाव पड़ता है परन्तु समय मेरे पास नहीं है। एक समाचार पत्र है, एक डिप्टी कलक्टर ने ३२४ में उसको दंड दिया आज की डेट के हिन्दुस्तान टाइम्स में जिक्र है, जिसको तीन वर्ष का दंड होना चाहिये था, उसे केवल ५१ रुपये फाइन करके छोड़ दिय गया है। मैं पूछता हूं कि यह प्रभाव एग्जीक्यूटिव का नहीं है तो और क्या है? डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के घर में जा कर छिपता है, चाकू से दूसरे पर प्रहार करता है। इसलिये मैं भगवान कैलाशनाथ जो इस घर के पुरखे हैं जो भंडारी कहलाते हैं उनका वाहन है वृद्ध बैल, अगर वह खुद विष खा कर प्रजा को अमृत पिलाये तब तो मैं समझता हूं कि प्रजा का कल्याण होगा और यदि साधारणतः एक पार्टी की भावना से कार्य किया गया तो क्या आनरेरी मजिस्ट्रेट और क्या दूसरे तीसरे वह हमारा कल्याण नहीं कर सकेंगे। इसलिये मैं तो इस भावना का हूं, हम अपमान नहीं करते, हम तो एक पत्थर की मूर्ति को भी ईश्वर बनाते हैं और प्रणाम करते हैं, हमने उनको अपना गृह मंत्री बनाया ह और हम तो उनको साक्षात भूतनाथ मानते हैं, वह स्वयं विष खान को तैयार हों और प्रजा को अमृत पिलायें।

Mr. Deputy-Speaker: Order, order. I am not going to allow any more time. I am calling Mr. Ramaswamy. He will have only 15 minutes. I have to give a chance to the others.

Shri S. V. Ramaswamy (Salem): There is not one hon. Member in this House who is not deeply inspired by the transparent sincerity of the hon. Home Minister. We want a reform of the judicial administration in this country; we want that perjury should be put down; we want that justice should be done speedily. His sincerity is really impressive. But, if what the hon. Deputy Home Minister spoke yesterday is a reflection of the mind of the hon. Home Minister, I am sorry I must make a strong protest against certain sections of this amending Bill.

I do not say that all the clauses in this Bill are bad. Some of them are really very good and I welcome them heartily. For instance, the provision under section 497 which says that if the accused cannot be tried and committed within six weeks' time, he shall be released on bail. I am most happy about it. This rule must have come years ago. The way in which ordinary prisoners are kept under trial is something heart-rending and I am glad that at last the hon. Home Minister has come to the rescue of these unfortunate people if the case cannot be completed within six weeks. There are also other provisions, such as extension of summons proceedings, provision for ordering increased maintenance and also compensation to the accused. These are all very good provisions. But, I must protest against certain clauses which are going to affect the fundamental principles on which the criminal administration of this country is based. I am afraid, Sir, they are going to shake and shatter the very fabric of criminal administration in this country. I shall point out to you certain clauses here and certain clauses there, that will clash with each other and the very object with which this amending Bill has been brought will be perfectly defeated. What is more is that even the police will not be able to prosecute the accused.

Mr. Deputy-Speaker: The hon. Member may kindly refer to this Bill and if there is time, speak on other matters.

Shri S. V. Ramaswamy: I am taking up both the Bills together.

Mr. Deputy-Speaker: He may bring out those points which are connected. In any case, I am not going to allow more than 15 minutes.

Shri S. V. Ramaswamy: First, I shall deal with clause 17. I must straightaway say that the proviso made in this clause goes against article 31 of the Constitution. Look at article 31, article 31 says:

> "(1) No person shall be deprived of his property save by authority of law."

According to the proviso that has been made in this clause, without even an enquiry a magistrate can attach my property. Supposing there is a *badmash* as my neighbour he can create trouble for me. He can induce the police to make a report and the magistrate can attach my property on the information given by the police without even making an enquiry into the matter. The proviso made under this clause in section 145 is:

> "Provided that if the magistrate considers the case one of emergency, he may at any time attach the subject of dispute, pending his decision under this section."

Under what right, under what authority of law can any magistrate attach the property of one who is entitled to it without even an enquiry into the matter? This is a most obnoxious measure. This will leave power in the hands of bad people, the undesirable in society, and no law-abiding citizen can be sure of his property. This is a very dangerous provision. The proviso to sub-clause (3) under this section 145, must also be deleted because it is definitely an infringement of article 31.

Now, Sir, I come to certain provisions on which much stress has been laid, namely, the clauses dealing with sections 161, 162, 163, 164 and 173 of Act V of 1898. I am afraid all these provisions have been granted by persons who do not know the trials and tribulations of persons who conduct the cases in a trial court. It is a most intricate affair; it is a very difficult affair; it is an hourly and minutely struggle with the police and the prosecution. It is not a question of helping the accused merely to get an acquittal, but it is a question of saving the liberty of an individual. To assume that every person who is placed in the dock is a guilty person is something very obnoxious. No person is guilty unless his guilt is proved. This is fundamental. This is the foundation of our criminal jurisprudence. Simply because he is placed in the dock, to assume that he is guilty is an atrocious thing. I should, say, therefore, that these provisions are not welcome. These, I must say will cut at the very root of the principles which ensure the liberty of individuals.

Now, section 162 is said to be deleted. Certain provisions under section 162 are tacked to provisions under section 161. Even the provisos have been removed. Now I will come to section 173. How is it possible to give the necessary material to the accused after section 162 is deleted? There is a very salutary provision under sub-clause (2) of section 162 and that is sought to be taken away. Now, Sir, the proviso under this section says:

> "Provided that, when any witness is called for the prosecution in such inquiry or trial whose statement has been reduced into writing as aforesaid, the Court shall on the request of the accused, refer to such writing and direct that the accused be furnished with a copy thereof, in order that any part of such statement, if duly proved, may be used *to contradict* such witness in the manner provided by section 145 of the Indian Evidence Act, 1872."

If you remove this sub-clause (2), you are not acting according to section 145 of the Indian Evidence Act. I am

[Shri S. V. Ramaswamy]

sure, Sir, that this is a very reactionary and retrograde provision. Somewhere about 6000 judicial decisions have been taken under this section 162 alone, everyone of them seeking to protect the individual against tyranny of authority and tyranny of executive. If you are going to remove this section 162, all those 6000 judicial decisions will be set at naught. This way, Sir, those statements which are given to a policeman can be used to corroborate the evidence against the accused. If you take away this proviso, where is the guarantee that these statements will not be misused for corroboration? Section 157 of the Evidence Act is there no doubt, and the danger lies in the way the 161 statements will be used as corroborative evidence under section 157. Unless you impose a limitation in terms of the proviso there is a very great danger to the liberty of an individual. In this respect I must say that I admire the way, the frank manner in which my hon. friend Mr. Frank Anthony was attacking this provision yesterday. I am entirely in agreement with him. Now, along with section 157 you must also see section 164. The High Court of Madras and, I believe, some of the other High Courts also have repeatedly, time and again, made adverse comments on the use of section 164 to pin down witnesses and make them commit perjury. It has been always a difficult task for those conducting defence in trial courts to get rid of these 164 statements. The accused goes before a magistrate and makes a statement under section 164. All the precautions that are supposed to be taken are recorded as taken and a verbatim report of the statement is recorded. But, as a matter of fact, we practitioners who are practising know the magistrates, do not take the precautions. The policeman sits behind and prompts the witness standing in the dock who is supposed to give statements which are voluntary. Such most atrocious things I have seen. In one case, Sir, the accused was made to say: "Yes, I did commit the murder". Later when he was apprised that the man will be hanged, he rolled down, rolled and rolled on the floor of the court and wept. Yet, the statement had gone, the man was hanged.

An Hon. Member: Atrocious.

Shri S. V. Ramaswamy: Sir, this section 164 is a curse. It should be used as little as possible. Now, under clause 20 in the present Bill, it has been provided:

> "The police officer may, in any cognizable case and shall, in all cases of offences triable by the Court of Session, require the attendance before a Magistrate of all such persons whose evidence, in the opinion of the police officer, will be material at the time of the inquiry or trial, to have their statements recorded under section 164; and such persons shall attend as so required."

This is a very extraordinary clause. The psychological effect of this will be either of these two things; either the witnesses will not come forward, or in order to save the accused there will be wholesale perjury; a wholesale set of cases under section 193 I.P.C. Supposing there are eight eye witnesses who are put in the witness box and examined under section 164, you pin them down to their statements. How can one get out of that? In the face of these statements recorded under section 164, how are we to save the accused who are innocent?

If you assume that all cases that are placed before the magistrate's courts are correct and true, I have no quarrel with you. But I know from my experience and from that of others, that not more than fifteen per cent. of the cases are true, and even in these cases....

Shri Punnoose (Alleppey): Five per cent.

Shri S. V. Ramaswamy: That is my experience.

Shri Dhulekar (Jhansi Distt.—South): No, no.

Shri S. V. Ramaswamy: You may say, no. But how can you question my experience? You may have your own experience. (*Interruptions*).

Mr. Deputy-Speaker: Does it include murder cases also?

Shri S. V. Ramaswamy: I may tell you one thing more. If there are more than three or four accused persons, invariably, one at least is an absolutely innocent person, and the judge acquits all the accused, because he cannot convict the man whom he finds to be innocent, since the evidence is joint. But if he convicts the persons who are charged with the offence he must convict all and he cannot release that person who is innocent, because the evidence is joint. If he splits up the evidence and acquits that man, the matter is then taken up by appeal, and on this ground, the other accused are also acquitted. It is because the investigation is not perfect that you are going to make wholesale use of section 164. I submit that it would mean the death-knell of all criminal investigation. It means that you are going to prevent witnesses from coming to depose evidence. Only those witnesses who will be subservient to the police will come forward to depose under section 164. No decent or respectable man will ever come forward to pin himself down to a statement under section 164. In the face of this, where we take up the defence and when we see the innocence of the accused, what are we to do? Of course, you may say, a lawyer has no conscience, and all that. But there are people who have got their consciences. There are people who are decent, and there are very many of them who stick to truth. I know from my private experience that there have been cases where people have stuck to truth. Supposing the case against the accused is not true, they must necessarily resort to a wholesale turning down of the evidence by section 164, and the result will be that there will be prosecutions under section 193 against all the witnesses, and the entire criminal justice administration in the country will be brought into disrepute and disregard.

I now come to section 173. The information and documents to be supplied to the accused are not complete. He will suffer from lack of information in respect of all the material that is required to be furnished from the case diaries. Should I finish so soon?

Mr. Deputy-Speaker: He can have one more minute. The hon. Member started at 9-35 A.M. or so. It is now nearing 9-50 A.M.

Shri S. V. Ramaswamy: I may be permitted to go on till 10 A.M.

Mr. Deputy-Speaker: If the hon. Member goes on dealing with other matters, he will have no time to deal with his own Bill, and it will be too late to do so.

Shri S. V. Ramaswamy: I shall rush through.

Shri Lakshmayya (Anantapur): The hon. Member being an experienced advocate, his time may be extended by five more minutes. (*Interruptions*).

Mr. Deputy-Speaker: Order, order. I am not going to accept anybody's recommendations.

Shri S. V. Ramaswamy: This is an important Bill, and I may request I may be given five minutes more.

Mr. Deputy-Speaker: What I find is this. Hon. Members are all anxious to make recommendations for increasing the time allotted for other hon. Members. But when the suggestion was made that there may be an evening sitting, hon. Members immediately rose and said, no, no. But how is the discussion to go on? The hon. Member says this is a very important Bill. I agree that it is a very important Bill, and all sections of the House must have full opportunity to speak on it. This measure is not only for the life of this House, the present Home Minister or any of us, but it is for all time

[Mr. Deputy-Speaker]

to come. I am fully aware of the gravity of the situation. But the misfortune is that hon. Members who have come thousands of miles away from their places are not prepared to sit for a second time in the day. At the same time, they recommend that the time must be extended by five minutes or ten minutes more. Am I to extend it to one hundred and fifty minutes? It is a very rare thing that I am perceiving in this House, of late, that Members are not prepared to sit in the House. Even if perchance I am prepared to sit for a second time, in the evening, over the heads of others, I find that there is no quorum, and I shall have to sit all alone and there is not a single Member in the House. (*Interruptions*).

Since it is the general desire of the House that Shri S. V. Ramaswamy should continue, he may go on till 9-55 a.m.

Shri S. V. Ramaswamy: The proposed sub-section 1-A to section 173 reads:

> "The report forwarded under sub-section (1) shall be accompanied by copies of the first information report recorded under section 154 and of all other documents on which the prosecution proposes to rely, including statements of witnesses recorded under sub-section (3) of section 161 and statements and confessions recorded under section 164."

Is that all? I beg to differ from you. There are very many other records on which, we know, the prosecution proposes to rely. Unless we have commital proceedings, we will not be in a position to get all those things. The statement recorded at the time of the inquest is the most important document for the defence, and it is on this document that the prosecution will rely for their case. But under the new provision, these important documents can be withheld from the accused. The statements recorded out. the inquest report are all treated as section 162 statements recorded by the police. I have never conducted a murder case in all my life, without getting at those documents. These documents, the inquest report as well as the statements recorded at the time of the inquest, are the most valuable documents from the point of view of the accused next in importance only to the F.I.R. Grave mistakes often committed at the inquest are discovered and in section 162 statements recorded by the inspector, he fills up the gaps. Thereafter, the circle inspector comes in and he detects some more gaps, with his superior intelligence, and he tries to fill up other gaps. Then, if it is a very sensational case, or a very important case, the deputy superintendent of police comes on the spot, and he goes into the records, and fills up the further gaps. Unless you are careful and vigilant, and unless you are wary, by their usual tricks, you will miss certain important statements. I know that the police as a rule do these things. I have been dealing with these cases for over a quarter of a century, and I know their usual tricks. They will give you only the section 162 statements recorded by the sub-inspector or the circle inspector. They will not supply the copy of the statements recorded at the time of inquest. That is the most valuable document that you can ever have for the defence of the accused. But no mention of that document is made in this section. You talk only of the first information report and other statements recorded under section 161. But what is the inquest report worth containing only the opinion of the *panchayatdars* and some minor particulars stating this was the height of the man, this was the breadth of the man, these were the injuries caused to him, he was lying with his head north or south, and so on. What about these inquest statements. These may not be supplied to the accused now, but only statements recorded under section 161. What is the report alone worth? If the proposed provision is passed into law, you will see that every man who

is put in the dock will be hanged by the neck till he is dead. That will be the result of section 173 as proposed to be amended now. Then, there are *post mortem* examination certificates, *mahazars* etc. There is no provision to be given to the accused. Supposing, again, there are statements recorded under section 27 of the Indian Evidence Act, are they to be supplied or not? If they are to be given, when are they to be given? As you know, the statements recorded under section 27 of the Indian Evidence Act contain all sorts of things by way of confession including statements like, I committed murder, etc. If you are going to furnish all those documents which are recorded in the case diary to avoid the committal proceeding, I can tell you quite honestly and sincerely that the prosecution will not be able to conduct a single case. If you place all these documents in the hands of the accused,—the documents which I am mentioning must also be supplied, if the spirit of the new clause is taken—I tell you the police will not be able to conduct one single case, and it will not result in one single committal. The trouble here is that you have got section 164, and I have told you already that no person will come forward to depose. No decent man will come forward to pin himself down to section 164 statements. Coupled with that provision, you have this wonderful section also in section 173. There is the other section, the result of which will be that if the magistrate thinks that a person is guilty of having given false evidence, he can immediately finish him then and there, adopting a summary procedure. In the face of this, who will come forward to give evidence? By means of this amendment to section 485 you are further terrorising the witnesses. No honest citizen who wants to do justice by the society and the country will ever come forward to give evidence in criminal cases, with these conditions and restrictions.

You must understand the psychology of the people also. Just as capital is shy in the money market, people are hesitant to come forward and give evidence before a criminal court. Why? Because there are so many harassments by the police. You must understand the psychology of the people, how things are going on and how people feel about it, instead of sitting under a fan and imagining things. You must understand the practical difficulties.

An Hon. Member: Very nice.

Shri S. V. Ramaswamy: It is a battle of wits beginning with the time that the charge is filed before the magistrate, in fact, it starts earlier, from the very time that a crime is committed. It is a regular battle of wits. It is like a game of chess, where pawns are moved from one side to the other side. The police move a pawn and then the defence moves one. That is the game that is going on. I tell you the investigation is not perfect. There is no certainty that the accused put before the court are the real accused and there are no more. Unless you guarantee, unless you infuse a feeling of confidence in the minds of the people that the people placed before the court are the only accused, guilty and none but the guilty, you will never be able to persuade people to come forward and give evidence.

I know of one instance in my State. I will tell you how wholesale perjury goes on. This is in respect of illicit distillation. Now, what do they do? They do the illicit distillation on mountain tops, on river beds and in jungles. Now, the police get some information that illicit distillation is going on in such and such a place. They raid the place. Now, before they raid, the people concerned get information. Illicit distillation is done in batches of 100 or 150 pots and so on. Then the whole party disappears leaving the pots and the wash. The police come and they do not know who is the owner of which pot. What do they do? I won't say they use third degree methods, but they use fourth-degree methods. They catch hold of one man. They treat him so

[Shri S. V. Ramaswamy]

nicely that he makes a confession as to which pot is whose. He says such and such pot belongs to such and such person. This is what is done. Yet, what is the record? I know it, because I have conducted cases. I know what it is, what horrors they have been through. They say 'such and such person, a Ramaswamy or a Krishnaswamy. I found this pot was in his house No. such and such'. This is attested to by the V. M. and the Kanam. Time and again I have spoken to these witnesses, official witnesses: 'Can you swear by what is stated there?'—this is outside, not in the witness-box, because there it is quite different. I have asked them whether they believed that what is contained in the *mahazars* is right. But the village official is afraid that his job will be gone, if he did not speak those false statements. So he has got to speak those statements even though he never saw Krishnaswamy or Muniswamy—in his house. This is how perjury is committed on the prosecution side.

Shri N. P. Nathwani (Sorath): The period of 15 minutes is already over and there are other Members who are anxious to speak.

Shri S. V. Ramaswamy: I will finish now.

Shri Velayudhan (Quilon *cum* Mavelikkara—Reserved—Sch. Castes): Can there be a clause by clause analysis like this.

Shri S. V. Ramaswamy: I am for the purity of criminal administration, and I am for improving it. But I am telling you that this is not the way to improve it.

Shri Dhulekar: Who are we? Are we not also for improving justice? You are not the only man who wants that. So why are you saying that?

Shri S. V. Ramaswamy: I am going to show how it should be done. Now, you do away with committal proceedings. Reading the Statement of Objects and Reasons, I find that committal proceedings are sought to be taken away because....

Mr. Deputy-Speaker: All this is very interesting. But we are not in eternity. There is some time-limit. I thought the hon. Member would impose a time-limit upon himself. Now, he must give up his Bill. He has not made a reference to his own Bill.

Shri S. V. Ramaswamy: I am glad that my Bill has been tacked on to this.

Mr. Deputy-Speaker: He need not start again.

Shri S. V. Ramaswamy: No, Sir. I must tell the House that in 1946 there was a conference of provincial Bar Federation at Madura, of which Mr. R. Venkataraman, was Secretary. We passed a resolution at that conference and I am glad that after all, that resolution is coming to fruition in 1954. The resolution said:

> "This conference is of opinion that the system of trial by jury and with assessors is unsatisfactory and urges the Government to take early steps to suitably amend the Code of Criminal Procedure for abolishing the same."

10 A.M.

It is a matter of immense satisfaction to us, to me and to Mr. Venkataraman, that the resolution which we passed as early as 1946 at the Madura conference is now coming to fruition. The hon. Minister, in August last when he was speaking on my Bill, seemed to have absolute faith in the jury system. Now, he is making it permissive. What is the change that has come about in the meantime? In the meantime, opinions have been gathered. More than 85 per cent. of the opinion is against the jury system. That is why from absolute faith in the jury system in 1953, he has now come to this position that it should be made permissive. Even so, I submit that this Bill should be

circulated for eliciting public opinion, in order to see how the fabric of criminal procedure which has existed for the last 50 years should be amended to realise our objectives. Mere tinkering with a clause here or a clause there will not, I submit, help. I earnestly submit that the proper thing would be to appoint a law commission. This is not the only Code that needs to be revised. The Civil Procedure Code, the Penal Code, the Evidence Act—all these Acts have got to be revised and modernised. I earnestly request the hon. Minister to appoint a law commission. It does not matter if it takes one year more. The hon. Deputy Minister said that we have waited long. Why should we not wait for one more year? Let a law commission consisting of a Justice of the Supreme Court, a Chief Justice of a High Court and an eminent jurist sit and go through the whole thing, examine and revise not merely this but the Civil Procedure Code, the Penal Code, the Evidence Act, and the Limitation Act in the light of our objectives. All these Acts need modernisation.

I hope the hon. Home Minister will forgive me for saying what I have said. I have got the greatest respect for him. He is an eminent lawyer, but still I must express my opinion, and I feel and do hope that the hon. Minister will find his way to withdraw this Bill and appoint a law commission at an early date.

Mr. Deputy-Speaker: Mr. Sinhasan Singh. He will speak on his amendment. Then I will call Mr. R. D. Misra to speak on his amendment. Then I will call upon Mr. Mulchand Dube to speak on his amendment.

Shri Debeswar Sarmah (Golaghat-Jorhat): Mr. Dube has already spoken

Mr. Deputy-Speaker: All right.

Shri Debeswar Sarmah: May we have a chance, Sir? If others take all the time...

Mr. Deputy-Speaker: What can I do? I cannot do anything. Hon. Members may pass a Resolution saying that we may sit for ten hours. I have no objection.

Shri Debeswar Sarmah: If the Chair says that he cannot do anything....

Mr. Deputy-Speaker: How can I extend the time?

Mr. Sinhasan Singh.

Shri Sinhasan Singh (Gorakhpur Distt.—South): This Bill has come after a long time since everybody in the country expected that there would be a change in the Criminal Procedure Code so that the procedure of trial and the system of administration may be changed. This amendment that has been brought before the House is a very big amendment covering the whole Criminal Procedure Code. But there are some things which are still left untouched. So I have moved an amendment saying that this House may instruct the Select Committee to suggest and recommend amendments to any other sections of the Code not covered by the Bill, if in the opinion of the Committee such amendments are necessary.

When we were not in the Government, we were saying all through that the system of judiciary should be changed, that the judiciary should be separated from the executive, so that the prosecutor may not remain himself the judge also. In our Constitution we have provided in article 50 that "The State shall take steps to separate the judiciary from the executive in the public services of the State". Now, this Directive Principle of the Constitution has been given a slight reference in this Bill. But it says, the State "shall" take steps to separate the judiciary from the executive. My amendment refers to that aspect of the matter so that the Select Committee may also go into the question whether the time has come or not to separate the executive from the judiciary. I believe the time has come. This has been our cry for a

[Shri Sinhasan Singh]

long time. When we were not in the Government, our main plank of agitation was that the executive should be separated from the judiciary and only the judiciary should be entrusted with the trial. I remember the time in our State of U.P. when Dr. Katju was the Home and Law Minister. He introduced there the partial separation of Judiciary from the Executive and put the Judicial Magistrate not under the control of the District Magistrate but under separate Additional District Magistrates. But, instead of putting them under a separate Additional District Magistrate, if they had been put under the control of the District Judges, probably the separation would have gone to a greater extent.

Attention may be drawn to a provision in this Bill and it is this: appeals from the second and third class magistrates which were going to the District Magistrate will hereafter, under the enactment of this new Bill, be filed with the sessions judges. At page 30 of the Bill, it is stated as follows:

> "Under section 407 appeals against convictions by Magistrates of the 2nd and 3rd Class lie to the District Magistrate who may direct that any appeal or class of appeals shall be heard by a 1st class magistrate empowered by the State Government to hear such appeals. As a step towards effecting separation of the Judiciary from the Executive it is proposed to suitably amend section 407 providing that such appeals shall lie to the Court of Session."

Thus, there is indication that the Government is also feeling the necessity of separating the executive from the judiciary. But I do not know what reasons have weighed with the Government not to come forward, after such a long time, with a Bill to separate the judiciary from the executive. In section 28 of the Criminal Procedure Code, there is a class of judges who are to try criminal cases. If my amendment is accepted, probably the scope will be extended and separation of the judiciary from the executive may be effected.

Section 28 of the Criminal Procedure Code says:

> "Subject to the other provisions of this Code any offence under the Indian Penal Code may be tried—
>
> (a) by the High Court, or
>
> (b) by the Court of Session, or
>
> (c) by any other Court by which such offence is shown in the eighth column of the second schedule to be triable."

If clause (c) is suitably amended, separation could be effected. The Government may say that difficulties may arise in this way, namely, of getting suitable personnel. I might point out that many of the Judicial Magistrates are LL.Bs. They can all be put under the supervision of the High Court and taken away from the direct control of the District Magistrate. Separation will be greatly effected if they suitably amend section 28 of the Criminal Procedure Code. If they accept my amendment, I think it will go a long way, and much of the stigma that is now being attached to our Government for not separating the judiciary from the executive will be removed.

I now go into the Bill itself. The Bill has been almost greatly condemned by many, but I do not go along with them. My hon. friend Shri Ramaswamy was saying that only 15 per cent. of the cases that go to the courts are correct, and the other 85 per cent. are incorrect. Probably he meant that. My experience has been otherwise that the police hardly challan a case which is not correct. There may be one or two persons in the group of the accused who may

not have actually participated in the crime. What happens is, the police gets hold of those persons who, in some way or other, have been connected with the crime or with the agents of the crime. When the complainant goes to lodge a police report, he mentions certain names, and then the police comes forward and tries to implicate them. But it is wrong to say that the police challan false cases. My experience has been that the police challan those persons who are in one way or the other connected with the crime or in the process of increasing the number of crimes

There are some very good provisions in the Bill. Firstly, for the first time, the accused are going to get from the court, without paying anything, all papers that are produced by the police to incriminate them. What has been the practice so far? We have been trying to get the first information report and all the statements of the police taken under section 161 of the Criminal Procedure Code through back-door, because no lawyer proceeds to frame a defence unless he knows what the prosecution says. Here is a provision which I welcome and which goes a great way to help the accused in getting the right defence. It would also help them by enabling them not to give money to the police for purposes of securing copies of such papers.

Another good provision in the Bill is that an appeal has been provided, from the second and third class magistrates, to the civil judges, or, rather, the sessions judges.

Another good provision is the granting of bail after six weeks. Now, in non-bailable cases, the accused have been kept in jail without getting bail, because the police have been getting remands in the hope of getting further evidence. According to the present provision, namely, the time of six weeks, either the court will have to finish the case or the man will get the bail. A great relief is being given to the accused by this provision.

I next refer to the commitment proceedings. There were some opinions expressed here, that the commitment proceedings in cognizable cases need not have been abolished. But I say I quite agree with the amendment. It is a right procedure that has been formulated. In the present circumstances, during the commitment proceedings, practically all the money that the accused possesses is taken away and he has very little left to defend himself in the Sessions Court. Under the new provisions, the accused is given all the papers concerned and is put up by the magistrate directly for trial before a court of session. It is wrong to say that in all cases of such a nature, the man gets acquitted. The man gets acquitted in the court of session not by mere contradictory statements here and there, but through major faults in evidence that he gets out of the witnesses in the sessions court. This is also a provision which will greatly relieve the accused from the harassments from which he is unnecessarily made to suffer.

I proceed to warrant cases. Warrant cases have also been simplified. What happens now is that we keep mum so long as the examination under section 252 is proceeded with. After charge-sheet, all the witnesses are brought forth for cross-examination. Then, other witnesses are produced and examined. So, it prolongs the case indefinitely. Then, section 257 comes in. Then also, the case is prolonged. But now, under the new provision, if I want any witness to be retained for further cross-examination, that would be done, and he could be examined after the cross-examination of all the witnesses whom the accused wants to examine first. I feel that this provision is a good one and that it should be maintained.

There is also a clause for providing appeals to the complainant. So far, private complaints meet with a bad fate. When private complaints come up in the criminal courts, the criminal courts take them up later, as they

[Shri Sinhasan Singh]

are mostly desirous of taking up the case of police prosecutions. Mostly, police prosecutions end in conviction, but private complaints end in acquittal. So, the private complainant, whose case falls through, has no remedy. He has no appeal provided for him, in the case of acquittal, but only the Government has the right of appeal. Provision has now been made in the Bill for an appeal to the High Court. But here I would make a suggestion. Instead of making him go and appeal to the High Court, the Bill should be so amended that after the accused is first convicted by the Sessions Judge in appeal against his order of acquittal by the Magistrate he should have the right to appeal to the High Court. This will meet the difficulty that was raised by some hon. Members.

I have taken hardly ten minutes.

Mr. Deputy-Speaker: The hon. Member has taken nearly 15 minutes.

Shri Sinhasan Singh: I shall take only two minutes more. I now come to the bad points. Sections 145 and 146 have been tacked together. This will give rise to unscrupulous persons to come forward and say that the rightful ownership belongs to them. The magistrate will say there are witnesses on both sides and the rightful owner will be deprived of his property and will have to go to the civil court because there is no provision by which the rightful person can be given his property by the magistrate. Unless he goes to the civil court he loses his property. It is also a bad provision.

Similar difficulty will arise out of proposed amendment to section 147. A man may not have been tying his bullock in the house or land of another but the moment he puts a claim that he had been so using the said lawn or the land will be attached. The man who is the owner of that house or land will be deprived and he will have to go to the civil court. It would have been better if section 147 would have been deleted; it would have been better had the matter been left to the civil court for decision. That is a very bad provision

Similarly I say about clause 107 that the provision that is being made may be used in a good way as well as in a bad way. A man may come to a police officer and say, 'Take Rs. 100 and have so and so arrested under section 107. Kindly put him in jail and he will give you more money'. So, it will be giving a handle to the police and men of criminal mind. I think Dr. Katju and the Select Committee will consider this point.

Shri Nambiar (Mayuram): What about the omission of section 162?

Mr. Deputy-Speaker: Let him go on.

Shri Sinhasan Singh: I have to state that from the opinions that have been circulated to us, we find that all of them are against the deletion of section 162. It was good for the accused because that was being used to contradict any witness who was saying something which was not said on the earliest occasion. In the case, likely to go to the sessions court, the examination of all witnesses before a magistrate is also something which I think is not desirable because all the witnesses are giving their statements in the absence of the accused and they are on oath and if the witnesses have been forced to make some statement by the police and if they want to speak the truth before the court, they will be confronted with their statements, which were recorded when the accused had no right to cross-examine them. That provision should not also have found a place. I do not think there is any difficulty in this because no guilty person should escape but, all the same, no innocent person should be convicted. For this purpose, we shall have suitably to amend it.

I will request the hon. Minister to take steps to separate the judiciary from the executive. So long as these

remain together, our whole difficulty will also remain and the time has come when Dr. Katju should take the step. While introducing the Bill he said it was memorable time for him that he had introduced this Bill, but I say he will make history by separating the judiciary from the executive. I know he is a bold and experienced lawyer and he will take bold steps (*Interruption*). He can separate the judiciary from the executive only by changing section 28 of the Criminal Procedure Code. As the time is short I will end with this.

श्री आर० डी० मिश्र (ज़िला बुलन्दशहर) : उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपका बहुत शुक्रिया अदा करता हूं कि आपने मुझे बोलने का मौका दिया । मैं अपने मंत्री महोदय को भी मुबारकबाद देता हूं कि वह जाब्ता फ़ौजदारी क़ानून में तरमीम करने के खातिर यह बिल लाये हैं और जैसा उन्होंने इस तरमीमी बिल के स्टेटमेंट आफ़ आबजेक्ट्स में बतलाया है, मैं उनसे पूरी हमदर्दी रखता हूं और मैं उसमें उनके साथ हूं । जैसा कि हमारे होम मिनिस्टर ने बतलाया कि ७० फ़ीसदी केस तो नीचे की अदालतों से छूट जाते हैं, तेरह फ़ीसदी केस ऊपर की अदालतों में छट जाते हैं, यानी ८३ फ़ीसदी केस छूट जाते हैं, १७ फ़ीसदी केस रह जाते हैं, उनमें भी जब वह सुप्रीम कोर्ट पहुंचते हैं तो कुछ वहां से और छट जाते हैं । आज हालत यही हो रही है और मैं पूछता हूं कि जिस देश के अन्दर इतनी बड़ी तादाद में मुलजिमान छूटते हों, उस देश में न्यायालयों पर जनता का कैसे भरोसा क़ायम रह सकता है ? और आज हक़ीकत यह है कि जनता को न्यायालयों पर कोई विश्वास नहीं रह गया है और तमाम जगहों पर झूठ का बोलबाला है । जहां तक इस बिल का ताल्लुक है, मैं अपने होम मिनिस्टर को इसको हाउस के सामने लाने के लिये बधाई देना चाहता हूं लेकिन मुझ माफ़ करें अगर मैं कहूं कि इस बिल को देख कर मुझे ताज्जुब हुआ कि आया जो कुछ हमारे होम मिनिस्टर साहब चाहते हैं वह बात इससे पूरी तरह से हासिल हो भी सकेगी या नहीं । हमें यह नहीं बतलाया गया कि किस तरह से यह अन्याय दूर हो सकता है और कैसे इंसाफ़ दुनिया में वापिस लाया जा सकता है । यह देश हमारा जो कभी सत्य और न्यायवादिता के लिये मशहूर था, आज उसकी क्या दशा है ? लोग यह अक्सर कहते सुने जाते हैं कि अदालत में जाकर सच बोलना तो गुनाह है और, "अरे भाई यहां कोई अदालत थोड़े ही है कि झूठ बोलो, यहां तो सच बोलो ।" आज हमारी अदालतों में सिवाय झूठ के और कुछ नहीं दिखाई पड़ता और मेरा अपना तो यह अक़ीदा रहा है और पिछले २८ वर्ष से मैं इस वकीली का पेशा करता आया हूं मेरा तो यह अक़ीदा रहा है कि जहां पर यह अदालतें होती हैं उसके बीस गज के फ़ासले तक चारों तरफ़ झूट का प्रचार होता है । मुझे इस सिलसिले में एक बात याद आ गयी । सन् १९३७ में जब मैं लखनउ गया, तो पंत जी ने मेरी मुलाकात भल्ला साहब से कराई और बतलाया कि इनको हमने करप्शन रोकने के लिये आफ़िसर मुक़र्रर किया है । उसके बाद भल्ला साहब मेरे पास आये और कहा कि हमें कुछ मुक़दमात दीजिये । मैंने उनसे कहा जनाब, मैं कोई पुलिस अफसर नहीं हूं कि मैं आप को मुक़दमे पकड़वाऊं, क्या आपने हम कांग्रेस मैनों को पुलिस का दलाल समझा है कि हम आप को केसेज़ पकड़वाते रहें । आपको पंत जी ने इसीलिये नौकर रक्खा है, आप खुद तहक़ीकात कीजिये और पता लगाइये मैं क्या बताऊं ? आप मुझ से पूछते हैं कि करप्शन का केस बतलाओ, मैं कहता हूं कि आप जिस बिल्डिंग में खड़े हैं, इसके किसी कोने के अन्दर कोई आदमी ऐसा नहीं जिसको मैं यह बता सकूं कि यह करप्ट नहीं है ।

[श्री आर० डी० मिश्र]

किस किस को मैं बतलाऊं ? हर कोने का थानेदार, तहसीलदार, सिपाही, चपरासी हाकिम अदालत सारे का सारा अमला इस मर्ज में मुब्तिला है, आवे का आवा ही खराब है, पर मैं करूं क्या, इसकी जिम्मेदारी किस पर है ? मैं तो इस बारे में निवेदन करने के लिये मौक़ा तलाश कर रहा था और आज मुझे सौभाग्य से इस जाब्ता फ़ौजदारी क़ानून को तरमीम करने के सिलसिले में अपने होम मिनिस्टर से अर्ज़ करने का मौका मिला। मैं तो मानता हूं कि अकेला यह जाब्ता फ़ौजदारी का क़ानून देश की मौजूदा हालत के लिये जिम्मेदार है । आज जो करप्शन और झूठ चल रहा है, जो एडल्टरी हो रही है, और यह जो सरकारी दफ़्तरों में रिश्वतसतानी बढ़ रही है और चल रही है उसकी जिम्मेदारी इस मौजूदा जाब्ता फ़ौजदारी क़ानून पर है । इन सब बुराइयों की जिम्मेदारी क्रिमिनल प्रोसीज्योर कोड पर है । इसका वह मतलब न समझ लीजियेगा कि ताज़ीरात हिन्द के क़ानून में कोई अच्छी चीज़ नहीं है। उसमें बड़ी अच्छी अच्छी दफ़ायें हैं लेकिन जो उनका असर होना चाहिये, मुलजिमान को सज़ा मिलनी चाहिये उसके लिये क़ानून हैं लेकि इंसाफ दिलाने के लिये नहीं जो जाब्ता बनाया गया है वह इतना निकम्मा बनाया है कि उसने सत्यानाश कर दिया तमाम न्याय का। आप पूछेंगे कि कैसे कर दिया तो सुनिये मैं आपको बतलाता हूं । जाब्ता फौजदारी में जुर्मों को दो भागों में बांटा गया है कागनेज़ेबुल और नान कागनेज़ेबुल । कागनेज़ेबुल और नान कागनेज़ेबुल केस क्या है ? इसका मतलब है कि कागनेज़बुल मुक़दमा वह है जिसमें पुलिस बिना वारंट गिरफ्तार कर ले और दूसरा मुक़दमा नानकागनेज़ेबुल ऐसा कि जिसमें पुलिस मजिस्ट्रेट से वारंट हासिल करके गिरफ्तारी करे। आज यह है कि अगर कोई सरकारी अफ़सर रिश्वत लेंगे तो उन पर मुक़दमा चलाने के लिये सरकारी सैंक्शन की ज़रूरत पड़ेगी, अगर अदालत में कोई झूठ बोलेगा तो अदालत मुक़दमा चलायेगी और अगर कोई शख्श डिफ़ेनेटरी एलिगेशन करेगा तो खुद जिसको गाली दी होगी वह मुक़दमा दायर करेगा, अगर किसी की घर वाली को कोई भगा कर ले गया है तो उसका पति मुक़दमा दायर करेगा और अगर किसी की औरत के साथ कोई व्यभिचार करता है तो पहले तो उसमें यह तहक़ीकात होनी चाहिये कि औरत की उसमें रज़ामन्दी तो नहीं थी और जब यह साबित हो जाय कि उसकी रज़ामंदी नहीं थी और उसके संग ज़बर्दस्ती व्यभिचार किया गया तो उस औरत का पति जा कर फ़रियाद करे कि मेरी बीवी के साथ फ़लाने ने ज़िनाह किया । मैं कहता हूं कि यह जो जाब्ता फ़ौजदारी क़ानून में १९५, १९६, १९७ और १९८ दफ़ायें बना दी हैं, इन दफाओं ने आपकी तमाम दण्ड पद्धति का सत्यानाश करके रख दिया है । इनके रहते उन सरकारी अफ़सरों के ऊपर जोकि रिश्वत लेते हैं, पुलिस मुकदमा नहीं चला सकती और पुलिस अफ़सर बिला वारंट के गिरफ्तारी नहीं कर सकता है । सरीहन थानेदार बैठा रहे और उसके सामने पेशकार रिश्वत लेता रहे लेकिन वह क्या करें वह इसमें कुछ नहीं कर सकते । क्योंकि यह नान कागनेज़ेबुल आफ़ेन्स है । वह कहते हैं कि मुझे कोई अख्तियार नहीं है तुम मजिस्ट्रेट के यहां चले जाओ और इसके खिलाफ़ शिकायत करो और उस पर मुक़दमा चलाओ । थानेदार सामने बैठा रहता है और उसके नीचे जो मुंशी रहता है वह रपट लिखाई चार रुपये ले लेता है और जब थानेदार से कहो तो वह जवाब देता है कि वह तो सरकारी अफ़सर हैं, हम

कैसे अपने आप उस को गिरफ्तार कर सकते हैं, वह तो नान कागनेज़ेबुल आफ़ेन्स है। यह भी खूब है कि सब-इंस्पेक्टर के नीचे कांस्टेबुल काम करता रहे और वह रिश्वत लेता रहे, लेकिन कुछ नहीं किया जा सकता क्योंकि वह नान कागनेज़ेबुल आफ़ेन्स में आता है। लेकिन इसके यह मानी नहीं कि वह नान कागनेज़ेबुल जुर्म में कुछ कर नहीं सकते अगर पुलिस के जी में आ जाय तो नान कागनेज़ेबुल आफ़ेन्स में भी केस को चला देती है। इस सिलसिले में मैं आपको अपना तजुर्बा बतलाऊं कि सन् १९३० में मेरे ऊपर ५०६ में केस चला दिया। जब मेरे ऊपर मुक़दमा चलाया गया तो मैंने मुक़दमें में बहस की। मैं ने कहा कि जनाब हम कांग्रेसी तो ये अंग्रेज़ी क़ानून आपके नहीं मानते, लेकिन आप तो सरकारी नौकर हैं। उस समय के० प्रसाद डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे, मैंने उनसे और लक्ष्मी शंकर मजिस्ट्रेट अदालत से कहा कि जनाब आप तो सरकारी नौकर हैं और आप तो सरकार के कानूनों को मानते हैं, यह नान कागनेज़ेबुल आफ़ेंस हैं, मुझ पर पुलिस की रिपोर्ट पर केस नहीं चल सकता, यह आप पुलिस की रिपोर्ट पर कैसे मेरे खिलाफ़ केस ले आये ? और मैंने जुर्म क्या किया था, कोई एक इश्तिहार हमारे कांग्रेस दफ्तर से जारी हुआ बहैसियत प्रेसीडेंट मेरे उस पर हस्ताक्षर थे उसमें लिखा था कि लोग अपनी विदेशी कपड़े की दुकान सील करदें नहीं तो उनकी दुकानों पर पिकेटिंग होगी, मैंने कहा कि जिस दुकानदार की बाबत आपको मालूम हुआ कि हमने उससे कहा कि दुकान के विदेशी कपड़े को मुहर बन्द करे उसको मुकदमा चलाना चाहिये लेकिन मेरी एक नहीं सुनी गई और दो साल की सजा ठोक दी। इसी तरह मैं आपको बतलाऊं कि सन् १९२१ में मेरे ऊपर ५०४ का मुकदमा चलाया गया और आप जानते हैं कि मैंने क्या जुर्म किया था ? कांग्रेस दफ्तर की तलाशी लेने के लिये पुलिस वाले आये और दफ्तर की तलाशी ली शाम को जलसा हुआ उसमें कुछ क़साई बैठे थे जब तलाशी के गवाह का ज़िक्र हुआ शायद उनमें से किसी के मुंह से निकल गया "लानत" हमने कहा भी नहीं लेकिन हम से कहा गया कि तुमने यह लफ्ज़ कहा और ५०४ हमारे ऊपर लगाया गया। मैंने पूछा कि ५०४ में पुलिस को चालान करने का अख्तियार किसने दे दिया, वह तो नान कागनेज़ेबुल आफ़ेन्स था, उसके बाद सन् ३० में १०८ में के० प्रसाद साहब की अदालत में मेरे ऊपर मुक़दमा चलाया गया . . . . .

गृह-कार्य तथा राज्य मंत्री (डा० काटजू): यह तो आप सन् ३० की चर्चा कर रहे हैं।

श्री आर० डी० मिश्र : यह एक वक़ील की चर्चा है कि अदालतों में कैसे काम होता है, सन् २१ से लेकर आज तक क्या हो रहा है, यह मैं आपको बतला रहा था। दफ़ा १०८ में लिखा है कि :

> "any person who either orally or in writing or in any other manner disseminates or attempts to disseminate, or in anywise abets the dissemination of,—
>
> (a) any seditious matter, that is to say, any matter the publication of which is punishable under section 124-A of the Indian Penal Code, or
>
> (b) any matter the publication of which is punishable under section 153-A of the Indian Penal Code shall be required to show cause why he should not be ordered to execute bond with or without sureties for his good behaviour not exceeding one year."

अब इस में यह है कि अगर कोई सामग्री जसका पबलिकेशन १२४-क जुर्म हो तो

[श्री आर० डी० मिश्र]

१०८ में सजा हो सकती है । हमने कहा कि जनाब इसमें यह जो पबलिकेशन लिखा है तो हमने तो कोई पबलिकेशन नहीं किया है, यह हम पर किस बात का मुक़दमा चला रहे हैं । आप १२४ पढ़ लीजिये १५३ पढ़ लीजिये ।

153-A. "Whoever by words, either spoken or written, or by signs or by visible representations, or otherwise, promotes or attempts to promote feelings of enmity or hatred between different classes of the citizens of India shall be punished with imprisonment which may extend to two years or with fine or with both.....

मैंने कहा कि मैंने तो कोई गुनाह नहीं किया है और मुझ पर यह मुक़दमा क्यों चलाया जा रहा है लेकिन मेरी बात नहीं सुनी गई और एक साल की सजा ठोंक दी । यह मैं सन् ३० की बात बतला रहा हूं जबकि के० प्रसाद डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे, वह रिटायर भी हो चुके । मैंने उनसे कहा और मैंने लिख दिया कि मैं इसे अदालत तसलीम नहीं करता लेकिन आप तो तसलीम करते हैं, आप को तो अपनी गवर्नमेंट के बनाये क़ानूनों को मानना चाहिये । मैं उस समय सोचता था कि जब कभी स्वराज्य होगा तो इस ज़ाब्ता फ़ौजदारी की धज्जियां उड़वा कर रख देंगे, मैं इसे क़ायम रहते नहीं देख सकता । मैं इसे बरदाश्त नहीं कर सकता । इसीलिये मैंने अपनी तरमीम दी है कि इस किताब का नाम बदल दिया जाय । और इसका नाम बदलने के बाद जो आप यहां के नागरिकों की मदद के लिये ज़ाब्ता क़ानूनें बनायें उसका नाम क्रिमिनल प्रोसीजर कोड १९५४ रक्खें और जो वाकई आज़ादी के बाद का कानून मालूम पड़े । आप पूछेंगे कि यह हिन्दुस्तान मेंझठ फार्जरी कहां से शुरू हुई ? इसकी शुरुआत यहां पर अंग्रेजों की हुकूमत के वक्त से शुरू होती है, होता यह था कि विदेशी हुकूमत के इशारे पर पुलिस वाले और थानेदार अपने विदेशी मालिकों को खुश करने के लिये झूठे बयानात लिख कर मुकदमे बनाते थे लोगों को दबाते थे और उन पर मुक़दमे चलाते थे, झूठे बयानात अपनी डायरी में दर्ज करते थे और लोगों पर मुक़दमा चलाते और उन पर तरह तरह के जुल्म करते थे क्योंकि उनको अपने अफ़सरों को खुश करना होता था, लेकिन अब तो यहां पर विदेशी हुकूमत नहीं रही है और इसलिये जनता को बेजा दबाना नहीं चाहिये । सन् १८८२ का जो फ़ौजदारी क़ानून था उसमें यह लिखा था कि थानेदार के सवालों के जवाब हर व्यक्ति सच्चे देगा—दफ़ा में "ट्रूली" वर्ड लिखा हुआ था । लेकिन अब दफ़ा १६१ के सब-क्लाज़ २ में यह है :

"Such person shall be bound to answer all questions relating to such case put to him by such officer..."

ट्रूली का शब्द सन् १८८२ के क़ानून में था, लेकिन १८९८ वाले क़ानून से अंग्रेज़ों ने उस ट्रूली लफ़ को उड़ा दिया । अब क्या बन गया केस ला जिस वक्त हमारे एक दोस्त ने अदालतों के वर्किंग के बारे में कुछ कहा तो हमारे कुछ वकील लोग नाराज़ हो गये और कहने लगे कि हम तो झूठे मुक़दमे नहीं चलाते, और आप ऐसा कह करके वकीलों के पेशे को बदनाम करते हैं, लेकिन मैं उन साहबान से जो यह अकड़ कर कह रहे हैं बतलाना चाहता हूं कि मुझे भी क़रीब अट्ठाईस वर्ष लोअर कोर्ट्स में काम करने का तजुर्बा हासिल है और मैं जानता हूं कि वहां पर किस तरह से गवाहियां मैनुफैक्चर की जाती हैं और झूठे मुक़दमें चलाए जाते हैं, हो सकता

है कि वह चूंकि बड़े दिग्गज वक़ील हैं और सुप्रीम कोर्ट में ही बहस करते हैं जहां मोटी मोटी किताबें पेश की जाती हैं और दुनिया भर की रूलिंग्स का हवाला दिया जाता है और जहां पर २५०० रुपये तक का तगड़ा मेहनताना लिया जाता है, वहां पर काम करने वालों को इसका तजुर्बा न हो लेकिन मैं उनकी खिदमत में अर्ज़ करता हूं कि आज न्याय या इंसाफ क्या बन गया है । वह यह है :

What is justice today? Justice is nothing but the influence of Advocacy. And what is advocacy? Advocacy is nothing but befooling the judge.

आज के न्याय का अर्थ है "बिफ़ूलिंग दी जज" मोटी मोटी किताबों को पेश करके और तर्क दे करके जिसने जज को अपनी ओर घुमा लिया, उसका काम बन गया । अरे साहब वाक़या यह है कि कोई क़त्ल हो और मुक़दमा चले तो निगरानी में कोई नहीं पूछता कि कोई क़त्ल हुआ या नहीं, पूछते क्या हैं, इसके लीगल ऐस्पेक्ट पर बहस करो, क़ानून पर बहस करो कि यह कांस्टीट्यूशनल है कि नहीं, भला पूछो इनसे कि क़त्ल हुआ है, उसके बारे में फ़ैस्ला करो, इसमें कांस्टीट्यूशन या क़ानून क्या करेगा वहां पर बहस होती है कि मजिस्ट्रेट ने सम्मन बाद में जारी किया या पहले जारी किया और कभी कहते हैं कि इस केस में कागनीज़ेन्स क़ानून के मुताबिक नहीं लिया गया । मेरे पास रूलिंग है और वह रूलिंग आर० आर० चारी कानपुर के केस की है उसमें बहस थी What does this word 'cognizance' mean?

लेकिन जाब्ता फ़ौजदारी में कहीं कागनीज़ेन्स की डेफीनेशन का पता ही नहीं है । उस आर० आर० चारी की रूलिंग में लिखा हुआ है कि जाब्ता फ़ौज़दारी क़ानून में कागनीज़ेन्स की कहीं तारीफ़ नहीं है । हमारे संविधान में एक आरटिकिल बना हुआ है कि तमाम देश में कानून की निगाह में हर आदमी बराबर रहेगा लेकिन हक़ीकत क्या है । बम्बई हाईकोर्ट कहता है कि हमारी रूलिंग मानो, मद्रास कहता है कि हमारी रूलिंग मानो, कलकत्ता कहता है कि हमारी मानो, पटना कहता है कि हमारी मानो और इलाहबाद हाई कोर्ट कहता है कि नहीं हमारी रूलिंग मानों और सब अपना अपना फ़ैसला अलग अलग देते हैं । आज होता यह है कि एक मर्तबा हाईकोर्ट फ़ैसला देता है कि यदि हाईकोर्ट में सिंगल जज का जो फ़ैसला हो उस फ़ैसले के खिलाफ़ भत जाओ, अगर जज को एखतलाफ हो तो मुद्दई और मुद्दालेह पर छोड़ दो, वह अपने आप अगर चाहेंगे तो अपील कर लेंगे और ऊंची अदालत से फ़ैसला करा लेंगे और उस अदालत पर रूलिंग के लिये छोड़ दो । फिर उसी हाईकोर्ट में यह राय बनती है कि अगर कोई जज फ़ैसले से एखतलाफ़ करे तो बेंच को रेफ़र कर दे , बेंच अगर डिफ़र करती है तो फ़ुल बेंच को रेफ़र कर दिया जाय और उसके बाद मुद्दई और मुद्दालेह पर छोड़ दिया कि वह चाहें तो सुप्रीम कोर्ट में अपील करें ।

मैं चाहता हूं कि आज जब आप इस फौज़दारी कानून में संशोधन करने जा रहे हैं तो सब से पहले तो आप को यह कानून बनाना पड़ेगा कि हाई कोर्ट के अन्दर अगर एक सिंगल जज दूसरे जज के पहले फैसले से डिफर करे तो उसे उस केस को बगैर फैसला किये हुए डिविज़न बैंच को रेफर कर देना चाहिये और डिवीज़न बैंच उस मामले में जो फैसला देगी उसको माना जायेगा ; और अगर डिवीज़न बैंच डिफर करती है तो उसे फुल बैंच को रेफर करा जाये और अगर एक हाई कोर्ट दूसरे हाई कोर्ट से डिफर करे तो उस केस पर रूलिंग देने के लिये सुप्रीम कोर्ट के पास भेजना चाहिये । सुप्रीम कोर्ट का फैसला

[श्री आर० डी० मिश्र]

आखिरी होगा। और सारे मुल्क को उसे मानना होगा, नहीं तो आप किस की मानेंगे और किस की नहीं मानेंगे, मद्रास का हाईकोर्ट एक रूलिंग देता है, बम्बई का हाईकोर्ट दूसरी रूलिंग देता है और आप देखते हैं कि एक कागनीजैन्स शब्द के ऊपर चार वर्ष तक मुकदमा चला ....

Mr. Deputy-Speaker: The hon. Member wanted only two minutes and I have already given him two more minutes.

श्री आर० डी० मिश्र : मैं चाहता हूं कि इस तरह कानून में लूपहोल न हो जिस से बेकार की बहस में समय और रुपया बर्बाद जाये और सालों मुकदमें चलते रहें। मैं अपने होम मिनिस्टर साहिब को बतलाना चाहता हूं कि सन् १९४७ में कांग्रेस ने हुकूमत की बागडोर सम्भाली, देश में बड़ी रिश्वतसतानी बढ़ रही थी और अखबार वालों ने भी इस बात को कहा कि देश म रिश्वत का बाजार गर्म है, कांग्रेस वाले रिश्वत और करप्शन को बन्द करने के लिये जवान दे चुके हैं, हमने भी अपने मंत्रियों का इधर ध्यान दिलाया और उन्हों ने अपने सेक्रेटेरियों से कहा कि रिश्वत अब बन्द होनी चाहिये, तमाम सेक्रेटेरियों ने कहा कि हां हुजूर बंद होनी चाहिये। लेकिन रिश्वत नहीं बन्द हुई। तमाम पार्लियामेंट के मेम्बर जोर लगाते हैं लेकिन रिश्वत बंद नहीं होती। तब पुलिस के आई० जीज़० को कानफरेंसें हुई होगीं यह जानने के लिये। रिश्वत क्यों नहीं बन्द होती। मालूम पड़ता है कि पुलिस वालों ने मश्विरा दिया कि जाव्ता फौजदारी में लिखा है कि पुलिस वाला बगैर वारंट के गिरफ्तारी नहीं कर सकता। इसलिये अगर रिश्वत लेने का जुर्म कागनिजेबिल आफैंस हो तो रिश्वत बन्द हो जाय। यह चीज़ होम मिनिस्टर साहिब के सामने रखी गई होगी। चुनांचे सन् १९४७ में रिश्व को रोकने का एक कानून पास किया गया

"An Act for the more effective prevention of bribery and corruption."

मिनिस्टर साहिब ने कहा होगा कि इसको कागनिजेबिल बना दिया जाय चुनांचे और दफा ३ में लिखा है :

"(3) An offence punishable under Section 161 or Section 165 of the Indian Penal Code shall be deemed to be a congnizable offence for the purpose of the Criminal Procedure Code, 1898, notwithstanding anything to the contrary contained therein;"

"Provided that a police officer below the rank of a Deputy Superintendent of Police shall not investigate any such offence without the order of a magistrate of the first class or make any arrest without a warrant."

क्या मतलब हुआ ? कागनिजेवल आफेंस के लिये लिखा है कि पुलिस वाला बगैर वारंट के गिरफ्तारी कर सकता है। ऊपर तो यह लिख दिया लेकिन नीचे लिख दिया कि "कैन नाट अरेस्ट बिदाऊट वारण्ट" और हाउस से यह कानून पास करा लिया। किसी ने कोई गौर नहीं किया कि ऊपर क्या लिखा है और नीचे क्या लिखा है। यहां कानून १५ मिंट में पास हो जाता है। अदालतों में चाहे जितनी रिश्वत चल रही हो, बेईमानी चल रही हो लेकिन पार्लियामेंट के बिजनेस रूल्स के मुताबिक यहां कानून १५ मिनट में पास हो जाता है। हमने डिमाक्रेसी वाली बात भी पढ़ी है कि कानून बनाने के पहले बहस मुबाहिसा किया जाय जब सब लोग अपनी राय सामने रखते हैं तो कानून अच्छा बनता है क्योंकि विल आफ दी पबलिक मालूम होती है। लेकिन यहां पर विल आफ दी पबलिक से कोई मतलब ही नहीं है। हम यहां बैठ बैठे गुराते रहते हैं हमारी

कोई नहीं सुनता, जनसंघ वाले और कम्यनिस्ट आते हैं और अपनी बात कहते चले जाते हैं। वह पार्लियामेंट की लाइब्रेरी से बाहर देशों की मोटी मोटी किताबें पढ़ते हैं और उनमें देखते हैं कि कौनसी गाली अंग्रेजी में पार्लियामेंटरी ढंग से दी जाती हैं उनको लिखकर लाते हैं और उन्हीं बातों को यहां कहते हैं। हमारे होम मिनिस्टर साहब भी बहुत खुश होते हैं कि बहुत अच्छी तकरीर की क्योंकि वह ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाउस आफ कामन्स की लैंग्वेज है। तो यह सन् १९४७ का कानून है और इसी के मातहत एक अफसर पर मुकदमा चला। मेरा मतलब कानपुर के स्टील कंट्रोलर आर० आर० चारी के केस से है। उन्हों ने बड़ी रिश्वत ली होगी। इसलिए उन पर मुकदमा चला। मिनिस्टर साहिब ने या किसी बड़े अफसर ने यह मामला तहकीकात के लिए पुलिस के सुपुर्द कर दिया। २७ अक्तबर सन् १९४७ को गिरफतारी हुई। लेकिन जमानत हो गई। इसके बाद पहली दिसम्बर १९४७ को गवर्नमेंट ने उनके ट्राइल के लिए एक स्पेशल मजिस्ट्रेट की कोर्ट मुकर्रर की। यह भी सन् १९४८ के बाद। इतने अर्से तक यह केस पड़ा रहा। कहां पड़ा रहा क्यों पड़ा रहा। मैं नें सुप्रीम कोर्ट की रूलिंग १९५१ एस० सी० आर० ३१२ देखी, पता नहीं लगा कि मकदमा बीच में कहां पड़ा रहा। विचार करने से अन्दाज लगा कि यह तो मिनिस्ट्री में घुसा रहा। सुप्रीम कोर्ट ने फैसले में लिखा है कि पुलिस तहकीकात करती रही। किस बात की तहकीकात करती रही ? सन् ४९ में गवर्नमेंट आफ इंडिया से सैंक्शन हुई कि इन पर केस चलाया जाय। गिरफ्तारी सन् ४७ में हुई और सैंक्शन सन् ४९ में हुई सवा वर्ष के बाद। बात यह है कि विभाग वाले मिनिस्टर के आगे पीछे लगे रहते हैं और मिनिस्टर उनकी बात को ही सुनते हैं, हमारी बात नहीं सुनते। हम लोग पीछे पड़ते हैं तो हमसे तो अकड़ जाते हैं लेकिन उन लोगों से दबते हैं। वोट हमारी है लेकिन रक्षा उनकी करते हैं। अब देखिये कि पबलिक सरवेंट्स का डेफिनेशन से बचाव किया गया है लेकिन इसमें हमारे लिये कोई गुंजाइश नहीं है। पार्लियामेंट के मेम्बर की कोई रक्षा नहीं है। अगर हम अपनी कांस्टीट्यूएंसी में पिट गये तो मिनिस्टर साहब कहीं के भी नहीं रह जायेंगे हम राजप्रमुखों को खत्म करना चाहते हैं लेकिन वह उनकी रक्षा करने को तैयार बैठे हैं। हमारी रक्षा कोई नहीं करता। आज आप पबलिक सरवेंट की रक्षा करते हैं। एक विलेज पंचायत का मेम्बर पबलिक सरवेंट है, एक म्युनिसिपल बोर्ड का मेम्बर पबलिक सरवेंट है, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का मेम्बर पबलिक सरवेंट है, चौकीदार से लेकर राष्ट्रपति तक सब पबलिक सरवेंट है और हम जो एस० एल० ए० और एम० पी० हैं वह कहीं भी नहीं हैं। हमारी इस कानून में कहीं रक्षा नहीं। हम दिन भर हाउस में बैठते हैं, अपना घर बार छोड़कर यहां पड़े रहते हैं लेकिन हम पबलिक सरवेंट नहीं हैं। और हमारी कोई रक्षा करने वाला नहीं है।

श्री अलगूराय शास्त्री : हम पबलिक हैं।

श्री आर० डी० मिश्र : तो जब आर० आर० चारी पर मुकदमा चला तो उन्होंने मजिस्ट्रेट साहिब के सामने एतराज़ किया कि मंजूरी ठीक नहीं है और दरखास्त दे दी। मजिस्ट्रेट ने सोचा होगा कि हम तो मजिस्ट्रेट हैं, हम तो मिनिस्टर का मुकाबला नहीं कर सकते, हम तो दरखास्त रिजेक्ट ही करेंगे। ये आई० सी० एस० और आई० ए० एस० सब एक हैं और मिले हुए हैं। रोज़ शाम को क्लब में शराब पीते हैं और नाचते हैं। मज़ा होता है। तो उसके बाद में क्या हुआ। केस चला हाईकोर्ट गया। हाईकोर्ट में जाने के बाद सुप्रीम

[श्री आ ० डी० मिश्र]

कोर्ट में गया। बहस यह की गई कि २७ अक्तूबर सन् १९४७ के पहले सैंक्शन होनी चाहिये थी वह नहीं हुई । मैं मिनिस्टर साहिब से कहता हूं कि जब केस चलाना था तो पहले सैंक्शन क्यों नहीं दी । जब वारंट से गिरफ्तार किया तो सैंक्शन उसके पहले होनी चाहिये थी । यह लूपहोल रखा। आज होम मिनिस्टर साहब के विभाग में लूपहोल हैं । मैं कहता हूं कि उनको बन्द कीजिये । मैं पूछता हूं कि क्यों नहीं मिनिस्ट्री ने वारंट के पहले सैंक्शन दी । और जिस ने सैंक्शन नहीं दी उसको दफ्तर में क्यों नौकर रखा हुआ है । उसकी वजह से चार वर्ष केस लड़ता रहा । उस मुकदमे में लड़ने की वजह यह थी कि कलकत्ता हाईकोर्ट की एक रूलिंग थी और वकील लोग उस किताब को लेकर आये और हाईकोर्ट के सामने पेश की औ कहा कि यह माई लार्ड की रूलिंग है। अब एक माई लार्ड दूसरे माई लार्ड की रूलिंग को कैसे नामंजूर कर सकते हैं। जब माई लार्ड के सामने पेशी हुई तो उन्हों ने कहा हमारा सूबा दूसरा है हम तो खारिज किये देते हैं । सुप्रीम कोर्ट में जाओ । सुप्रीम कोर्ट में वह रूलिंग पेश हुई और हमारे चटर्जी साहब ने पैरवी की । उन्होंने खूब मेहनताना लिया होगा । सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सन् ४७ की २७ अक्तूबर से जो कार्रवाई हुई वह १५६ (३) में आ जाती है। इसलिये मुकदमा चलाया जाय । अब सुप्रीम कोर्ट ने यह तय कर दिया कि कागनिजेबिल आफेंस क्या होता है । आपको इस चीज़ को जाव्ता फौजदारी में लिख देना चाहिये नहीं तो छोटी छोटी जगहों में वकील फिर भी अदालतों को उसी कलकत्ता की रूलिंग को दिखला कर बहकाते रहेंगे । जब केस ला डिकलेअर हो जाय तो आपको उसके मुताबिक अमेंडमेंट कर देना चाहिये । मुझे और बहुत सी बातें कहनी थीं लेकिन डिप्टी स्पीकर साहब नाराज़ हो रहे हैं इसलिये मैं खत्म करता हूं ।

Mr. Deputy-Speaker: The hon. Home Minister will reply tomorrow. I understand from the hon. Minister of Parliamentary Affairs that the House must stand adjourned from now as a mark of respect. So the House will now stand adjourned to meet at 8-15 a.m. tomorrow.

The House then adjourned till a Quarter Past Eight of the Clock on Saturday, the 8th May, 1954.